जैन एवं मसीही-योग : तुलनात्मक अध्ययन

(डॉ. एलरिक बारलो शिवाजी)

तुलनात्मक अध्ययन खतरे से खाली नहीं है क्योंकि मानव जब परिपूर्णता की ओर बढ़ता है तो अपने साथ वंशानुक्रम से प्राप्त संस्कारों को लेकर बढ़ता है और तुलनात्मक अध्ययन करने पर कभी-कभी उसके संस्कारों को आघात पहुंचता है फिर भी मानव प्रवृत्ति आरम्भ से ही ऐसी रही है कि वह अपने धर्म की अन्य धर्म से तुलना करता आया है और उत्तम विचारों को ग्रहण कर जीवन-पथ पर आगे बढ़ता आया है । तुलनात्मक दृष्टि से किसी वस्तु अथवा विचार पर चिंतन करने पर एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी वस्तु अथवा विचार स्वयं में श्रेय अथवा अश्रेय, उचित अथवा अनुचित, सौंदर्ययुक्त अथवा असौंदर्ययुक्त नहीं होता किन्तु, मानव के चिन्तन का दृष्टिकोण उसे श्रेय अथवा अश्रेय, उचित अथवा अनुचित स्वीकार करने में सहायक होता है ।

उपरोक्त कथन के अनुसार जैनयोग, मसीही योग, पांतजलियोग, ज्ञान-योग, कर्मयोग, भक्ति-योग नहीं होते हैं । मानव ने विभिन्न दृष्टियों से नामकरण का लेबल लगाने का कार्य किया है फिर भी - मानव चिंतन, चिंतन है और वह जीवन शैली का निर्माण करता है कि स्वयं भी उस पथ पर चले और अन्य को भी चलने के लिए प्रेरित करें, इसी सन्दर्भ में हम जैन एवं मसीही-योग का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करेंगे ।

जैनधर्म में योग

जैन के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ उत्तराध्ययन (२९वें अध्याय) में यह बताया गया है कि शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्तियों का जो पूर्ण निरोध है, वह संवर है और वही योग है । वास्तव में यदि देखा जावे तो जैन धर्म में योग का विषय नीतिशास्त्र है । इसी कारण तत्वार्थ सूत्र में भी शरीर, मन एवं वाणी की क्रिया को योग कहा गया है (कायवाङ्मनःकर्मयोगः- तत्वार्थसूत्र ६/१) । पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री का इस सम्बन्ध में यह कहना है कि "योग दर्शनकार चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं, किन्तु जैनाचार्य समिति-गुप्ति स्वरूप उस धर्म-व्यापार को योग कहते हैं, जो आत्मा के मोक्ष के साथ योग यानी सम्बन्ध कराता है ।"[१] जैन धर्म में तपश्चर्या का स्थान अधिक है, जैसा कि डॉ. सम्पूर्णानन्द भी लिखते हैं - "इस सम्प्रदाय में योग की जगह तपश्चर्या को दी गई है ।"[२]

जैन-दर्शन में विशेषकर समाधियोग, ध्यानयोग, भावना-योग आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु, जैनधर्म अथवा दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को महत्व दिया गया है । तत्वार्थ सूत्र १/१/१ में इन्हें मोक्ष मार्ग कहा गया है । सम्यक् ज्ञान के अन्तर्गत वास्तविकरूप उजागर होता है, जिसमें (१) द्रव्यानुयोग (२) गणितानुयोग (३) चरणकरणानुयोग और (४) धर्मकथानुयोग को लिया जाता है । सत्य के प्रति श्रद्धा की भावना रखना सम्यक् दर्शन है, जो कि बौद्धिक आधार पर होता है । सम्यक् चरित्र मे मनुष्य पांच प्रकार के पापों - हिंसा, असत्य, चोरी, दुष्चरित्रता और सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति से बच जाता है । 'सम्यक् चरित्र के दो भेद हैं - (१) सकुल : जिसका व्यवहार सिर्फ मुनि करते हैं और (२) विकल - जिसका व्यवहार गृहस्थ करते हैं । गृहस्थ पाप न करने का संकल्प करता है तथा कुछ अंशों में निवृत्त भी होता है किन्तु मुनि अपने संकल्प के अनुसार पूर्ण आचरण करता है । जैन-धर्म के ये तीन रत्न वास्तव में जैन धर्म की रीढ़ हैं और ये ही योग के साधन हैं । हिन्दू धर्म में ज्ञान, कर्म और भक्ति में से कोई भी एक मार्ग मोक्ष के लिए यथेष्ट समझा जाता है किन्तु, जैन धर्म में मोक्ष-लाभ के लिए सम्यक् दर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यक् चारित्र तीनों की आवश्यक मान्यता है ।"[३]

जैन धर्म मे पंच महाव्रत का बहुत अधिक महत्व है । यह पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं । इनके अतिरिक्त कई छोटे-छोटे व्रत और तपस्याएं है । जैन अनुयायी योग को बारह तपस्याओं के समतुल्य देखते हैं, जिसमें छः बाह्य है और छः आंतरिक, बाह्य में प्रथम अनशन अथवा उपवास है, दूसरा है अनोदरी, जिसका अर्थ है, कम भोजन करना । तीसरा है भिक्षा चारिका या वृत्ति संक्षेप, जिस में जीवन-निर्वाह के साधनो में संयम बढता जाता है । चौथा है रस-परित्याग, जिसमें सरस आहार का परित्याग किया जाता है । पांचवा है कायक्लेश, जिसमें शरीर को क्लेश दिया जाता है और छठवीं बाह्य तपस्या है प्रति संलीनता, जिसमें इन्द्रियों को अपने विषय से हटाकर अंतर्मुखी किया जाता है । आन्तरिक तपस्या में प्रथम है प्रायश्चित्त, जिसमें पूर्वकृत कर्मों पर पश्चात्ताप किया जाता है । दूसरी आन्तरिक तपस्या है विनय अथवा नम्रता । तीसरी तपस्या है - वैयावृत्य जिसमें दूसरों की सेवा करने की आत्मा होती है । चौथी तपस्या है - स्वाध्याय । पांचवीं तपस्या ध्यान है जिसके द्वारा चितवृत्तियों को स्थिर किया जाता है । ध्यान के विषय में आगे वर्णन किया जायेगा । अंतिम है व्युत्सर्ग, जिसके द्वारा शरीर की प्रवृत्तियों को रोका जाता है ।[४] इस प्रकार जैन धर्म की प्राचीन व्यवस्था में योग के द्वादशांग का रूप है । पातंजल योग की तरह यहां अष्टांग व्यवस्था नहीं है ।

जैन धर्म दो प्रकार के साधक मानता है - (१) संसार साधक और

---

१ जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ३, किरण २, वि. सं. १९९३, पृ. ५३

२ योग-दर्शन - डॉ. सम्पूर्णा, पृ. २

३ संस्कृति के चार अध्याय-एवधारी सिंह 'दिनकर' पृ. १२१

४ ध्यान योग : रूप और दर्शन - सम्पादन डॉ. नरेन्द्र भानावत

दोष दृष्टि है स्वयं की, गुण दर्शन नहीं क्लेश ।
जयन्तसेन उपासना, करता चित्त चकोर ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) निर्वाण साधक । संसार साधक भौतिक साधनों को, ऐश्वर्य को प्राप्त करने की साधना करता है जब कि निर्वाण साधक की साधना कैवल्य प्राप्त करने हेतु होती है । इस स्थिति में जो ध्यान किया जाता है वह दो प्रकार का होता है (१) धर्मध्यान और (२) शुक्लध्यान । शुक्लध्यान के भी चार भेद हैं - (१) पृथक्त्व वितर्क (२) एकत्व वितर्क (३) सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति और (४) व्यपरत क्रिया निवृत्ति । वैसे जैन धर्म में ध्यान के चार भेद किये जाते हैं (१) आर्त (२) रौद्र (३) धर्म (४) शुक्ल । पंडित कैलाश चंद्र शास्त्री इन ध्यानों पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि आर्त और रौद्र को दुर्ध्यान कहते हैं और धर्म तथा शुक्ल को शुभ । इष्ट-वियोग, अनिष्ट संयोग शारीरिक वेदना आदि आदि सांसारिक व्यथाओं को कष्ट जनक मानकर उनके दूर हो जाने के लिए जो संकल्प-विकल्प किये जाते हैं, उन्हें आर्तध्यान कहते हैं । जो प्राणी धर्म का सेवन करके उससे मिलने वाले ऐहलौकिक और पारलौकिक सुखों की कल्पना में तल्लीन रहता है, जैनधर्म में उसे भी आर्तध्यानी कहा गया है । हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पांचों के सेवन में ही जिसे आनन्द आता है वह रौद्र ध्यानी कहा जाता है । धर्म से संबंधित बातों के सतत चिंतन को धर्मध्यान की संज्ञा दी गई है । इसके भेद हैं - 'पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत । शुक्ल ध्यान का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, जिसमें "प्रथम में वितर्क और विचार को पृथक अस्तित्व में देखना होता है, दूसरी स्थिति में दोनों को एकता के रूप में देखा जाता है, तीसरी स्थिति में केवल मानस की सूक्ष्म क्रियाएं रहती हैं और चौथी स्थिति में वे भी समाप्त हो जाती हैं ।"

जैन धर्म की प्राचीन व्यवस्था के अन्तर्गत 'योग' शब्द के स्थान पर 'ध्यान' पर अधिक बल दिया गया है । दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के 'ज्ञानार्णव' नामक ग्रंथ में ध्यान का सुन्दर विवेचन प्राप्त होता है ।

मुनिश्री नथमलजी "जैनयोग" की प्रस्तुति में लिखते हैं कि "जैनधर्म की साधना-पद्धति में अष्टांग योग के सभी अंगों की व्यवस्था नहीं है । प्राणायाम, धारणा और समाधि का स्पष्ट रूप स्वीकार नही है । यम, नियम, आसन, प्रत्याहार और ध्यान इनका योग दर्शन की भांति क्रमिक प्रतिपादन नहीं है । इसी कारण वैदिक युग से चली आ रही प्राणायाम की मान्यता को जैन साहित्य में समर्थन प्राप्त नहीं हुआ । हेमचन्द्र प्रभृति जैन दार्शनिकों ने प्राणायाम का निषेध ही किया है । योग की दृष्टि से विचार करने वाले आचार्यों में आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य शुभचन्द्र और उपाध्याय यशोविजयजी का नाम उल्लेखनीय है । आचार्य हरिभद्रसूरि की रचनाओं में योग-दृष्टि समुच्चय योग बिन्दु, योग विंशिका, योग शतक और षोडंशक प्रमुख ग्रंथ हैं ।"[३] आचार्य हेमचन्द्र का प्रसिद्ध ग्रंथ "योग शास्त्र हैं । शुभचन्द्रजी ने "ज्ञानार्णव" की रचना और यशोविजयजी के ग्रंथों में अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद, योगावतार बत्तीसी प्रमुख हैं ।

आचार्य हरिभद्रसूरिने 'योग-दृष्टि समुच्चय' में ओघदृष्टि और योगदृष्टि पर चिंतन किया है । नथमल टाटिया उनकी पुस्तक 'Studies in Jaina Philosophy' में लिखते हैं कि प्रमुख आध्यात्मिक और धार्मिक क्रियाएँ जो मोक्ष की ओर ले जाती हैं, हरिभद्रसूरि के मतानुसार योग है ।[१] इस ग्रंथ में योगिक विकास के आठ स्तर बताये हैं । सबसे महत्व पूर्ण सम्पर्क दृष्टि है, जिसका आठ स्तरोंपर विभाजन किया है - (१) मित्रा (२) तारा (३) बल (४) दीप्ता (५) स्थिरता, (६) कान्ता (७) प्रभा (८) परा । ये आठ दृष्टिया हैं, जो कि पातंजल योगसूत्र के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से साम्य रखती हैं । दूसरा वर्गीकरण, जो हरिभद्रसूरिने किया है, वह है - इच्छा योग, शास्त्र योग, सामर्थ्य योग तथा तीसरा वर्गीकरण उन्होंने योगी के भेदों द्वारा किया है, वह है - गोत्रयोगी, कुलयोगी, प्रवृत्त चक्रयोगी और सिद्धयोगी । 'योग दृष्टि समुच्चय' में योग के तीन प्रकार बताये गये हैं । उद्देश्य द्वारा योग, जिसके बारे में उन्होंने लिखा है :-

"कर्तुमिच्छोः श्रुतार्थस्य, ज्ञानिनोऽपि प्रमादतः ।
विकलो धर्मयोगो यः इच्छा योगः स उच्यते ॥

उपर्युक्त श्लोक द्वारा यह बताया गया है कि वह व्यक्ति, जो धर्मशास्त्र को सुनता है, उनके निर्देशों को जानता है और उसके अनुसार चलना चाहता है, इस योग को उद्देश्य द्वारा योग कहा जाता है ।

दूसरा प्रकार है धर्मशास्त्र द्वारा योग । इस संबंध में हरिभद्रसूरि का कथन है -

"शास्त्रयोगस्त्विह ज्ञेयो, यथाशक्त्यप्रमादिनः'
शास्त्रस्यतीव्रबोधेन वचसाऽविकलस्तया ॥

अर्थात् - वह व्यक्ति, जो शास्त्रों में श्रद्धा रखता हो और उसकी योग्यता के प्रति सचेत हो, धर्मशास्त्र को अच्छी तरह जानता हो और सब दोषों से मुक्त हो, उसे धर्म शास्त्र द्वारा योग कहा गया है । तीसरे प्रकार का योग है "स्वयं के परिश्रम द्वारा योग", जो सबसे उत्तम है । इस विषय पर हरिभद्रसूरिजी का कथन है -

"शास्त्रसंदर्शितोपायस्तदतिक्रांतगोचरः ।
शक्त्युद्रोदविशेषेण,
सामर्थ्याख्याऽययुत्तमः ॥"

'स्वयं के परिश्रम द्वारा योग' दो प्रकार का है - (१) धर्म का सन्यास और (२) योग का सन्यास । धर्म

डॉ. एलरिक बारलो शिवाजी
एम.ए., दर्शनशास्त्र, पी.एच.डी.
विभिन्न पत्र पत्रिकाओं तथा अभिनन्दन ग्रंथों में पचास लेखों का प्रकाशन । तीन ग्रंथ प्रकाशित।
सम्प्रति - २७, रवीन्द्रनगर, उज्जैन.

संकट औरन का हरे, परहित वारे प्राण ।
जयन्तसेन ऐसा नर, जग में बडा महान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहां पर क्षयोपाशिका की सद्वस्तु के लिए काम में लिया जाता है और योग शारीरिक क्रियाओं के रूप में, जिसमें मन, वचन और शरीर सम्मिलित हैं ।

आचार्य हरिभद्रसूरिने 'योगबिन्दु' १/३१ में योग के पांच सोपान अथवा स्तर बताये हैं - अध्यात्म, भाव, ध्यान, समता और वृत्तिसंक्षय । इसके साथ ही योग के अधिकारी के रूप में चार विभाग किये हैं - अपुनवर्धक, सम्यगदृष्टि, देश-विरति और सर्वविरति ।

योग बिन्दु के संबंध में "भारतीय संस्कृति में एवं विशेषतः जैन धर्म में निम्नलिखित वर्णन पाया जाता है :-

"योगबिन्दु में ५२७ संस्कृत पद्यों में जैन योग का विस्तार से प्ररूपण किया गया है । यहां मोक्ष व्यापक धर्म व्यापार को योग और मोक्ष को ही लक्ष्य बताकर चरम पुद्गल परावर्त-काल में योग की सम्भावना अपुनवर्धक, भिन्नग्रंथि, देशविरत और सर्वविरत (सम्यगदृष्टि) ये चार योगाधि-कारियों के स्तर; पूजा-सदाचार-तप आदि अनुष्ठान, अध्यात्म, भावना आदि योग के पांच भेद; विष, गरलादि पांच प्रकार के सद् वा असद् अनुष्ठान तथा आत्मा का स्वरूप परिणामी नित्य बतलाया है । पांतजल योग और बौद्ध सम्मत योग भूमिकाओं के साथ जैन योग की तुलना विशेष उल्लेखनीय है ।

योगविंशिका में हरिभद्रसूरि ने योग को पांच प्रकार का बतलाया है - (१) स्थान (२) उर्ण (३) अर्थ (४) आलम्बन (५) अनालम्बन । स्थान योग में कायोत्सर्ग, पर्यंक, पद्मासन आदि आसन आते हैं । उर्ण में शब्द का उच्चारण, मंत्र-जप आदि का समावेश है । अर्थ में नेत्र आदि का वाच्यार्थ लिया जाता है । आलम्बन में, रूपी द्रव्य में मन को केन्द्रित करना होता है और अनालम्बन में चिन्मात्र समाधि रूप होता है । षोडशक ग्रंथ में 'हरिभद्रसूरि ने मस्तिष्क के प्राथमिक दोषों को बताया है, जिन को पृथक् करना आवश्यक होता है । वे आठ हैं :- (१) जड़ता (२) आकुलता (३) अस्थिरता (४) विचलिता (५) भ्रांति (६) किसी दूसरे को आकर्षित करना (७) मानसिक अशान्ति और (८) आसक्ति ।

आचार्य हेमचन्द्रसूरिजी ने योगशास्त्र में पांतजल योगसूत्र के अष्टांग योग की तरह भ्रमण तथा श्रावक-जीवन की आचार साधना को जैन आगम साहित्य के प्रकाश में व्यक्त किया है । इस में आसन, प्राणायाम आदि का भी वर्णन है । पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानों का भी वर्णन किया है और मन के विक्षुप्त, यातायात, श्लिष्ट और सुलीन - इन चार भेदों का भी वर्णन किया है, जो आचार्यजी की अपनी मौलिक देन है ।[१]

आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् आचार्य शुभचन्द्र का नाम आता है । "ज्ञानार्णव" के सर्ग २९ से ४२ तक में आपने प्राणायाम और ध्यान के स्वरूप और भेदों का वर्णन किया है ।[२]

योगशास्त्र के विकास में यशोविजयजी का नाम भी उल्लेखनीय है । उन्होंने अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद, योगावतार-बत्तीसी, पांतजल योग सूत्रवृति, योग विंशिका-टीका, योग दृष्टि नी सजझाय आदि महत्वपूर्ण ग्रंथो की रचना की है । अध्यात्मसार ग्रंथ के योगाधिकार और ध्यानाधिकार प्रमाण में गीता एवं पांतजलि योग सूत्रों का उपयोग करके भी जैन परंपरा में विश्रुत ध्यान के विविध भेदों का समन्वयात्मक वर्णन किया है । अध्यात्मोपनिषद में चिन्तन करते हुए योगवाशिष्ठ और तैतरीय-उपनिषदों के महत्वपूर्ण उद्धरण देकर जैन - दर्शन के साथ तुलना की है । योगावतार बत्तीसी में पांतजल योग सूत्र में जो साधना का वर्णन है, उसका जैन दृष्टि से विवेचन किया है और हरिभद्र के विंशिका और षोडशक्ति ग्रन्थों पर महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखकर उसके रहस्यों को उद्घाटित किया है ।"

जैन धर्म में समाधि की भी चर्चा है । समाधि का अर्थ चित्त की चंचलता पर नियंत्रण करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । डॉ. भागचंद्र जैन का कथन है कि नायाधम्म कहाओ (८, ६९) की अभयदेव - टीका में समाधि का अर्थ चित्त - स्वास्थ्य किया गया है । दशवैकालिक सूत्र (९-४-७-९) में समाधि मे दो भेद मिलते हैं - तप समाधि और आचार समाधि । कर्म क्षय के लिए किया गया तप 'तप-समाधि' है और कर्म-क्षय के लिए किया गया आचार का पालन 'आचार-समाधि' है ।

जैन योग में कुंडलिनी के विषय में भी वर्णन किया गया है । इस संबंध में 'श्री नथमलजी टाटिया का कथन है कि "जैन-परंपरा के प्राचीन साहित्य में कुंडलिनी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता । उत्तरवर्गी साहित्य में इस का प्रयोग मिलता है । आगम और उसके व्याख्या साहित्य में कुंडलिनी का नाम तेजोलेश्या है ।"

एक विशेष तथ्य, जो जैन धर्म में दिखाई पड़ता है, वह यह है कि लौकिक फल की प्राप्ति के लिए योग की साधना करना निन्दनीय समझा जाता है ।

मसीहीयोग

हिन्दू संस्कृति में विश्वास किया जाता है कि मनुष्य योग द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है । भारतीय दर्शन के अनुसार योग का अर्थ जीव का परमात्मा से, ईश्वर से जुड़ना है, मिलना है । मसीही शास्त्र, बाइबल यह बताती है कि डेनियल, यहकेकलयशय्याह, संत पॉल और संत जॉन ने ईश्वर का दर्शन पाया था उनका प्रयास, उनका परिश्रम शारीरिक योगाभ्यास के द्वारा नहीं था । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मसीही योग भारतीय योग से भिन्न प्रकार का है । वैसे योग न मसीही होता है, न बौद्ध, न जैन और न भारतीय । योग तो उस क्रिया का नाम है जिसका अभ्यास करने पर चिन्तन, मनन पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता है । संत पौलस इन शारीरिक क्रियाओं के बारे में जानता था और इसी कारण वह लिखता है कि "शारीरिक योगाभ्यास के भाव से ज्ञान का लाभ तो है परन्तु शारीरिक, लालसाओं को रोकने में इन से कुछ भी लाभ नहीं होता ।"[१] योग से देहसाधना की जाती है, प्रवृत्तियों पर नियंत्रण किया जाता है किन्तु प्रभु यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर को जानने के लिए पौलस स्पष्ट शब्दों में कहता है कि "क्योंकि देह की साधना से कम लाभ होता है,

पर की ताकत अन्त में, करे सदैव निराश ।
जयन्तसेन निजात्म बल, पाओ सत्य प्रकाश ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर भक्ति सब बातों के लिए लाभदायक है ।"[२]

मनुष्य भोग के माध्यम से सिद्ध बनना चाहता है । मसीही-धर्म की शिक्षाएं भी इस तथ्य को प्रकट करती है कि मनुष्य को सिद्ध होना चाहिए जैसा कि कहा भी गया है - "इसलिए चाहिए कि तुम सिद्ध बनो, जैसा तुम्हारा पिता सिद्ध है ।"[३] सिद्ध बनने के उपाय भी सुझाये गये हैं । परमेश्वर अब्राहम को कहता है, "मेरी उपस्थिति में चल और सिद्ध होता जा ।"[१] पौलस याकूब की पत्नी से कहता है, "धीरज से मनुष्य पूर्ण और सिद्ध होता है ।"[२]

नारायण वामन तिलक जो एक भारतीय थे और जिन्होंने मसीही धर्म स्वीकार कर लिया था, यह मानते थे कि प्रभु यीशु मसीह योग का प्रभु है । उसने एक ऐसी यौगिक पद्धति बतलाई है जो सरल और सहज है । भारतीय योग में योगी वैराग्य को अपनाकर वैरागी होता है जबकि मसीही योगपद्धति में मसीही योगी को प्रभु यीशु मसीह का अनुरागी होना आवश्यक है । मसीही धर्म शारीरिक योगाभ्यास को नहीं किन्तु आत्म-योगाभ्यास को उत्तम मानता है जैसा कि लिखा है - "शारीरिक मनुष्य परमेश्वर के आत्मा की बातें ग्रहण नहीं करता क्योंकि वे उसकी दृष्टि में मूर्खता की बातें हैं और न वह उन्हें जान सकता है क्योंकि उनकी जाँच आध्यात्मिक रीति से होती है ।"

मसीही योग के सम्बन्ध में कुछ विचार :-

भारतीय दृष्टि को ध्यान में रखकर कुछ मसीही अनुयायियों ने मसीही योग को भारतीय संदर्भ में देखने का प्रयास किया है । सर्वप्रथम हम जे. एम. डेचनेट के विचारों से अवगत होगें, जिन्होंने क्रिश्चियन-योग नामक पुस्तक की रचना की है । उन्होंने मसीही योग में चार प्रकार के अभ्यास बताये हैं - (१) पवित्रता को आध्यात्मिक अभ्यास के द्वारा पाना (२) प्रार्थना का अभ्यास (३) संगति का अभ्यास और (४) ईश्वर के सम्मुख प्रतिदिन की उपस्थिति । प्रार्थना पर उन्होंने बहुत अधिक बल दिया है और इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि "एक मसीह को प्रार्थना में अपने जीव को खोजना नहीं पड़ता या पूर्वीय विद्वानों की तरह अपने को भूलना नहीं पड़ता, परन्तु वह अपने आप को परमेश्वर के वचन के सम्मुख उद्घाटित करता है क्योंकि इसी से वह अपने को खोज सकता है और उसका अस्तित्व है ।"

एन्थोनी डी. मेलो के विचार :-

एन्थोनी डी. मेलो एक कैथोलिक फादर है, वे साधना संस्था, पूना के संचालक हैं । उन्होंने उनकी पुस्तक 'साधना - ए वे टू गॉड' में ध्यान पर अधिक बल दिया है और चार तथ्यों पर अभ्यास करने को कहा है - (१) सावधानी जिसमें उन्होंने पांच अभ्यास बताये हैं - मौन की आवश्यकता, शारीरिक संवेदना, शारीरिकसंवेदना और विचार नियंत्रण तथा श्वास-प्रश्वास संवेदनाएं । (२) दूसरे को उन्होंने सावधानी और ध्यान कहा है । इसमें उन्होंने नौ अभ्यास दिये है - ईश्वर मेरी श्वास में, ईश्वर के साथ श्वास-संचार, शान्तता, शारीरिक प्रार्थना, ईश्वर का स्पर्श, ध्वनि, ध्यानावस्था, सभी में ईश्वर को ढूंढना और दूसरों की सचेतता ।[३] तीसरे अभ्यास को 'कल्पना' के अन्तर्गत रखा गया है जिसमें यहां और वहां की कल्पना, प्रार्थना के लिए एक स्थान, गलील को लौटना, जीवन के आनन्दायक रहस्य, दुखभरे रहस्य, क्रोध से मुक्ति, खाली कुर्सी, इगनेशियन ध्यान, प्रतीकात्मक कल्पनाएं, दुःख पहुंचाने वाली स्मृतियों का अच्छा होना, जीवन का मूल्य, जीवन के स्वरूप का देखना, अपने शरीर को त्यागते समय बिदा कहना, तुम्हारी अन्त्येष्टि, मृतक शरीर की कल्पना और भूत, भविष्य और व्यक्ति की चेतना की बात कही गई है । (४) चौथे अभ्यास में 'भक्ति को लिया गया है जिस के अन्तर्गत बेनेडिक्टाइन प्रकारों का समावेश है - जैसे कण्ठी प्रार्थना, प्रभुयीशु मसीही की प्रार्थना, ईश्वर के हजार नाम, मध्यस्थता कराने की प्रार्थना, यीशु मसीह उद्धारक है उसका निवेदन, पवित्र शास्त्र की आयतें, पवित्र-इच्छा, केंद्रित ईश्वर, प्रेम की जीवित आग, प्रशंसा की प्रार्थना आदि के रूप में अभ्यास बताया गया है ।

फादर न्यूना के विचार :-

फादर न्यूना ने उनकी पुस्तक 'योग और मसीही ध्यानमें निम्नरूप से अपने विचार व्यक्त किये हैं -

"मसीही धर्म और योग में विशेष भिन्नता है । मसीही धर्म में ईश्वर से एक व्यक्तिगत सम्बन्ध है जो कि योग के स्वयं ध्यान, उन्नति, परावर्त्तन और मनुष्य शक्ति से भिन्न है ।"

अप्पास्वामी के विचार :-

अप्पास्वामी लिखते हैं कि हमें यह स्पष्टकर देना चाहिए कि कोई मसीहीयोग और हिन्दुयोग नहीं है । यह मानसिक अनुशासन है और किसी भी धर्म के अनुयायी द्वारा काम में लिया जा सकता है ।[२]

बाइबल में वर्णित चमत्कार :-

कुछ व्यक्ति बाइबल में वर्णित चमत्कारों को योग द्वारा मानते हैं । उदाहरण स्वरूप देखें तो बाइबल के पुराने नियम में एंलिशा नबी का वर्णन है । एक दिन एक-विधवा स्त्री एलिशा के पास आई और उसने निवेदन किया कि मुझे महाजन का ऋण देना है । महाजन मेरी सन्तानों को बेच देने का भय दिखा रहा है । अतः मेरी रक्षा कीजिये एलिशा ने पूछा - तुम्हारे घर में कोई सम्पति है या नहीं, स्त्रीने उत्तर दिया कि एक छोटे से बर्त्तन मे केवल थोड़ासा तेल है । एलिशा ने उत्तर दिया - "जाओ अपने पड़ोसियों के घरों से मांगकर बड़े-बड़े जितने बर्त्तनों मिल सके, ले आओ और अपने इस तेल के बर्त्तन से तेल डाल-डालकर उन सब बर्त्तनों को भर दो, देखोगी जितना डालोगी उतना ही बढ़ता जायेगा । सब बर्त्तन भर जायेंगे, फिर उस तेल को बेचकर ऋण चुका देना और जो कुछ बच रहे उसे अपने निर्वाह के लिए रख लेना ।"[१] ऐसा ही हुआ । इसी प्रकार एक बार एलिशा ने सात सौ लोगों को भोजन करवाया था[२] । प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या एलिशा एक योगी था ?

प्रभु यीशु मसीह के चमत्कार तो बहुत प्रसिद्ध हैं । उन्होंने मुर्दों को जिलाया, कोढ़ियों को शुद्ध किया, पांच हजार लोगों को भोजन करवाया, पानी पर चले, हवा और तूफान को

स्वच्छंदी मानव यहाँ, कभी न होत महान ।
जयन्तसेन निर्दयता, उस के घट में जान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्त किया, पानी को दाख-रस बनाया, अन्धों को आंखे दी आदि-आदि । यह सब तथ्य उन के पूर्ण योग एवं निष्कलंक अवतार होने के संकेत देते हैं । एलिशा और प्रभु यीशु मसीह के शिष्यों ने भी चमत्कार किये किन्तु वे सब परमेश्वर के अनुग्रह के कारण थे और यही मसीही योग और भारतीय योग में अन्तर दिखाई देता है ।

जैन धर्म एवं मसीही धर्म में समानता :-

जैन धर्म एवं मसीही धर्म में पहिली समानता यह है कि दोनों धर्म हैं जिसे मानव को धारण करने की शिक्षा दी जाती है । जैन-धर्म के अनुसार जैसे ही वस्तु का अपना धर्म है उसी प्रकार मानव का अपना धर्म है, स्वभाव है कि वह अपने को जाने यह परमतत्व है, तो मसीही धर्म में परमेश्वर का सान्निध्य परम तत्व है जिसे योग की क्रिया द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

जैन धर्म में तपश्चर्या पर अधिक बल दिया जाता है क्योंकि तपश्चर्या भी योग है । इस तपश्चर्या में कर्म भी निहित है । इसी प्रकार मसीही धर्म में पापों को स्वीकार करना तपश्चर्या है । यहां समानता इस बात में है कि जैन अनुयायी का विश्वास होता है कि तपश्चर्या द्वारा वह कैवल्य प्राप्तकर सकता है । मसीही धर्म में भी बिश्वास की महत्ता है । बिश्वास की साधना है । बिश्वास से ही तपश्चर्या का उदय होता है ।

जैन धर्म पंच महाव्रत का प्रतिपादन करता है । उसी प्रकार मसीही धर्म में प्रायश्चित्त के व्रत (प्रेरितों के काम २७:९), अठवारे के व्रत (मत्ती ९:१४) का विधान है । बाइबल बताता है कि मूसाने चालीस दिन का व्रत रखा था (१ राजा ३७:९) । प्रभु यीशु मसीह ने भी चालीस दिन का व्रत रखा था (मसी ४:२, मरकुस १:१२-३, लूभा ४:२) व्रत इस दृष्टि से रखा जाता है कि हम परमेश्वर का स्मरण करते रहें । व्रत रखना एक अभ्यास है । जैन धर्म में जैसे पंच महाव्रतों का पालन करना अनिवार्य है । उसी तरह तप के अन्तर्गत एक मसीही को व्रत को साधन बनाते हुए मन फिराना अर्थात् पश्चात्ताप करना अनिवार्य है । मसीही धर्म में पश्चात्ताप अपने पापों से करता है क्योंकि पाप के द्वारा ही मृत्यु है । जैनधर्म में जहां त्रिरत्न के अन्तर्गत सम्यग् दर्शन सम्यग ज्ञान एवं सम्यग् चरित्र के अन्तर्गत बाह्य एवं आन्तरिक सभी बातों का विधान उपस्थित है उसी प्रकार मसीही धर्म में विश्वास, प्रेम, नम्रता, सेवा की भावना निहित है । जैन अनुयायी वैयावृत सेवा की चर्चा करते हैं वही मसीहियों ने मानव सेवा को प्रभु की सेवा के रूप में स्वीकार किया है । यही कारण है कि मसीही मिशनरियों ने अपने जीवन का उत्सर्ग कर, मानव की सेवाकर, कीर्त्तिमान स्थापित किये हैं । भारत में स्कूलों की स्थापना, अस्पतालों की स्थापना, नर्सेस ट्रेनिंग केन्द्रों की स्थापना कर इस बात को बता दिया है, और अन्य जातियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है । यह बात अलग है कि सेवा के साथ-साथ उन्होंने मसीही धर्म का प्रचार भी किया जिस के कारण से कई दरिद्रनारायणों ने मसीही धर्म को स्वीकार कर जीवन में उन्होंने अपना स्थान बनाया है । मैं सोचता हूँ कि मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन कर क्या पाया ? कुछ नहीं । हर मसीही पहिले भारतीय है और अपनी मिट्टी से जुड़ा हुआ है, उसके जीवन में सद्गुण की बहुलता है जो अन्य धर्मावलम्बियों में 'दृष्टिगोचर नहीं होती ।' यम के अन्तर्गत 'अपरिग्रह' का प्रावधान है । जैन धर्म में 'अपरिग्रह' रीढ़ के समान है । मसीही धर्म और जैन धर्म दोनों में 'अपरिग्रह' को लेकर बहुत अधिक समानता है । मैं विचार करता हूँ कि इस प्रत्यय ने जहाँ मसीहियों को आध्यात्मिक रूप से ऊँचा उठाया है वहीं दूसरी ओर संसार में उन्हें गरीब बना रखा है । गरीबी, धनवान बनने से श्रेष्ठ है । धनवानों के विषय मे कहा गया है कि परमेश्वर के राज्य में धनवान के प्रवेश करने से ऊंट का सूई के नाके में से निकल जाना सहज है ।

योग मानव जीवन को उठाने का साधन है, साध्य नहीं । इस हेतु जैन मतावलाम्बियों ने पांतजल योग सूत्रों को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया, न ही मसीहियों ने । जैसा कि आरम्भ में हम देख चुके हैं कि "शारीरिक-योगाभ्यास के भाव से ज्ञान का लाभ तो है परन्तु शारीरिक लालसाओं को रोकने में इन से कुछ भी लाभ नहीं होता ।" दोनो धर्म, जैन और मसीह, में समानता यही है कि दोनों शारीरिक योग के स्थान पर आत्म-योग को प्रधानता देते हैं । जैन धर्म में कषायों से मुक्ति मिल जाना ही कैवल्य है और इसीलिये वह दिन प्रतिदिन इस ओर अग्रसर होता रहता है और कर्मों के माध्यम से ईश्वर बन जाने की ओर, तीर्थंकर हो जाने की ओर प्रयास होता है ।

जैन और मसीही धर्म दोनों आन्तरिक शुद्धि पर बल देते हैं । मसीही धर्म में विश्वास और पश्चात्ताप द्वारा आत्म शुद्धि है वहीं दूसरी ओर जैन धर्म में संवर और निर्जरा का महत्व है । यहां भी हमें दोनो धर्मों में समानताः दृष्टिगोचर होती है ।

जैनधर्म और मसीहीधर्म में अन्तर :

जैन धर्म के अनुयायी चौबीस तीर्थंकरों में विश्वास करते है । ऐसी मान्यता है कि अब आगे कोई तीर्थंकर नहीं होगा । मसीही केवल प्रभु-यीशु में विश्वास करते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि इस संसार का अन्त होगा और प्रभु यीशु मसीह न्याय के दिन फिर आयेंगे और कर्मों के अनुसार समस्त व्यक्तियों का निर्णय होगा ।

जैनधर्म के अनुयायी केवल पूर्वकृत कर्मों पर पश्चात्ताप करता है, व्रत और तपस्याओं को मान्यता देता है किन्तु, मसीही धर्म में केवल पूर्वकृत कर्मों से ही पश्चात्ताप नहीं हैं वरन समस्त पापों का प्रायश्चित किया जाता है । व्रत एवं तपस्याओं का जो शरीर से सम्बन्धित है कोई मूल्य नहीं है ।

जैनधर्म एवं दर्शन ने अपने तर्कशास्त्र को विवेचना के द्वारा बहुत अधिक बढ़ाया किन्तु मसीही धर्म ने तर्कशास्त्र को इतना महत्व नहीं दिया । उसने मसीही धर्म को 'विश्वास, आशा, प्रेम' की भित्ती पर खड़ा किया जिसकी प्रेरणा वह मसीही धर्म के प्रवर्तक प्रभु यीशु मसीह से, जो निष्कलंक अवतार हैं, प्राप्त करता है ।

उपसंहार :-

जैन और मसीही, दोनों धर्मों ने नीतिशास्त्र को महत्व दियां और मानव के व्यक्तिगत जीवन की ओर ध्यान देकर मानव-मूल्य को समझने में योगदान दिया है ।

मेकप करना छोडकर, चेकप करो जरूर ।
जयन्तसेन प्रबुध्द हो, गूंजे मंगल तूर ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org